IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रवासी जीवन के बीच स्त्री की अस्मिता की तलाश: उषा प्रियंवदा के *अंतर्वंशी* के संदर्भ में

[1]Dr. Anoopa Krishnan,Assistant Professor,Department of Hindi, Mahatma Gandhi College,Thiruvananthapuram,Kerala ,India (Affiliated to University of Kerala)

सार (Abstract)

आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य ने निरंतर सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रतिबिंबित किया है, विशेषकर स्त्री-अस्मिता और प्रवासी अनुभवों के संदर्भ में। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों में उषा प्रियंवदा स्त्री-चेतना और प्रवासी जीवन के सूक्ष्म एवं संवेदनशील चित्रण के कारण विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनका उपन्यास अंतर्वंशी (2000) प्रवासी परिवेश में परंपरा और आधुनिकता के अंतर्विरोध, वैवाहिक संबंधों की जटिलता, आर्थिक अस्थिरता तथा आत्मपहचान की खोज को केंद्र में रखता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वाना, सारिका और अंजी जैसे पात्रों के माध्यम से नारी अस्मिता और प्रवासी चेतना के प्रश्नों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रियंवदा स्त्री-पुरुष विरोध का समर्थन नहीं करतीं, बल्कि स्त्रियों को पितृसत्तात्मक तथा अंतरराष्ट्रीय (ट्रांसनेशनल) संरचनाओं के भीतर अपनी पहचान और स्थान का सचेत रूप से निर्माण करती हुई आत्मसजग व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द: नारी अस्मिता, प्रवास/प्रवासी चेतना, स्त्री-विषयकता, उषा प्रियंवदा, हिंदी उपन्यास

प्रस्तावना

साहित्यकार अपने समय और समाज से अलग रहकर सृजन नहीं करता। उसके आसपास का सामाजिक परिवेश, बदलती जीवन-स्थितियाँ और मानवीय संबंध किसी न किसी रूप में उसकी रचनात्मक दृष्टि को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि साहित्य में केवल लेखक की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही नहीं, बल्कि उसके युग की सामाजिक सच्चाइयाँ भी अभिव्यक्ति पाती हैं। आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में उषा प्रियंवदा ऐसी ही महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं, जिन्होंने बदलते समाज और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

उषा प्रियंवदा का कथा-संसार और स्त्री-चेतना

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की एक विशेष पहचान उनका सजीव और मनोवैज्ञानिक पात्र-चित्रण है। उनके पात्र केवल कथा को आगे बढ़ाने वाले माध्यम नहीं बनते, बल्कि अपनी इच्छाओं, उलझनों, संघर्षों और अंतर्द्वंद्वों के साथ पाठक के सामने जीवंत व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं के अनेक पात्र पढ़ने के बाद भी स्मृति में बने रहते हैं। कहानी *वापसी* के गजाधर बाबू हों, *रुकोगी नहीं राधिका* की राधिका, *कितने बड़े झूठ* की किरण अथवा *अंतर्वंशी* की वाना—हर पात्र की अपनी अलग पहचान और जीवन-दृष्टि है। इन चरित्रों के माध्यम से उषा प्रियंवदा ने व्यक्ति के भीतर चलने वाले भावनात्मक संघर्षों के साथ-साथ बदलते सामाजिक मूल्यों और संबंधों की जटिलता को भी प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में स्त्री-मन, उसकी संवेदनाएँ, पारिवारिक-सामाजिक संबंध और बदलती परिस्थितियों के बीच अपनी पहचान बनाने का संघर्ष विशेष रूप से उभरकर सामने आता है। उनकी स्त्री केवल किसी एक निश्चित रूप में दिखाई नहीं देती, बल्कि जीवन की अलग-अलग परिस्थितियों से जूझती हुई अनेक रूपों में हमारे सामने आती है। कहीं वह परिवार और संबंधों के प्रति अपने दायित्वों को निभाती है, तो कहीं अपने अस्तित्व, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के लिए प्रश्न भी उठाती है। इस प्रकार उषा प्रियंवदा स्त्री के निजी अनुभवों के माध्यम से उन

सामाजिक स्थितियों की ओर भी ध्यान आकर्षित करती हैं जो उसके व्यक्तित्व और जीवन के निर्णयों को प्रभावित करती हैं।

भारतीय और पाश्चात्य परिवेश के बीच स्त्री

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में लंबे समय तक स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग भूमिकाएँ निर्धारित की जाती रही हैं। परिवार और समाज से मिलने वाले संस्कारों के कारण अनेक स्त्रियों के भीतर यह धारणा गहरी होती गई कि उनकी खुशी, प्रतिष्ठा और जीवन की सार्थकता मुख्यतः पति, बच्चों और परिवार से जुड़ी हुई है। ऐसी स्थिति में वैधव्य, तलाक अथवा दांपत्य संबंधों के विघटन जैसी परिस्थितियाँ केवल संबंध-विच्छेद तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि स्त्री की आत्मछवि और उसके जीवन-बोध को भी प्रभावित करती हैं। उषा प्रियंवदा ने स्त्री की इसी मानसिक और सामाजिक स्थिति को अत्यंत संवेदनशीलता से अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। उनकी आरंभिक रचनाओं में आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक मर्यादाओं का दबाव, संबंधों की घुटन और इन बंधनों से बाहर निकलकर अपने लिए जीवन तलाशने की आकांक्षा बार-बार सामने आती है।

समय के साथ स्त्री-शिक्षा, सामाजिक जागरूकता और महिला आंदोलनों ने स्त्री की स्थिति और उसकी आत्मचेतना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता ने उसे घर की पारंपरिक सीमाओं से बाहर निकलने और सामाजिक जीवन में अपनी स्वतंत्र भूमिका बनाने के अवसर प्रदान किए। लेकिन यह परिवर्तन सहज और संघर्षरहित नहीं रहा। एक ओर स्त्री अपने अधिकारों, इच्छाओं और स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति अधिक सजग हुई, तो दूसरी ओर पारंपरिक सामाजिक मूल्यों और पुरुष-केंद्रित मानसिकता के साथ उसका टकराव भी बढ़ा। उषा प्रियंवदा की नायिकाओं में इस संक्रमण से उत्पन्न मानसिक द्वंद्व को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रुकोगी नहीं राधिका की राधिका इसी बदलती स्त्री-चेतना का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। वह अपने जीवन और भविष्य को स्वयं निर्धारित करने की आकांक्षा व्यक्त करते हुए कहती है—"अब मैं स्वतंत्र हूँ, परिपक्व भी और गढ़ सकती हूँ अपना जीवन और अपना भविष्य।"[1] राधिका की स्वतंत्रता केवल बाहरी बंधनों से मुक्ति का प्रश्न नहीं है; उसके भीतर अपनी शर्तों पर जीवन जीने और स्वयं निर्णय लेने की गहरी इच्छा भी मौजूद है। उसके संघर्ष का मूल भी इसी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से जुड़ा है—"झगड़ा पीढ़ियों के दृष्टिकोण लेकर नहीं हुआ था। राधिका अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के लिए लड़ी थी।"[2] इस प्रकार राधिका के माध्यम से लेखिका उस स्त्री को सामने लाती हैं जो परंपरा और आधुनिकता के बीच खड़ी होकर अपने जीवन की दिशा स्वयं निर्धारित करना चाहती है।

अंतर्वंशी: कथाभूमि और जीवन-संदर्भ

यही आत्मचेतना उषा प्रियंवदा के अन्य स्त्री पात्रों में भी अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है। उनकी आधुनिक स्त्री घर और परिवार को अस्वीकार नहीं करती, लेकिन वह अपनी पूरी पहचान को केवल इन्हीं भूमिकाओं तक सीमित भी नहीं रखना चाहती। शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और अपनी इच्छाओं को महत्त्व देना उसके व्यक्तित्व का हिस्सा बनता जाता है। *अंतर्वंशी* की वाना के भीतर विकसित होती महत्त्वाकांक्षा इसी बदलाव की ओर संकेत करती है—"पर महत्वाकांक्षा का अंकुर जो वाना के अन्दर फूटने लगा है; वह उसे कहाँ तक ले जाएगा। एक दिन उसका अपना घर होगा, गाड़ी और उँगली में चमकता हीरा, जो छह-सात साल में शिवेश से नहीं जुटा, वह अब अपनी खुशी से ही उपलब्ध करेगी।"[3] यहाँ वाना की आकांक्षा केवल भौतिक सुविधाएँ प्राप्त करने तक सीमित नहीं है; इसके पीछे अपने श्रम और सामर्थ्य के बल पर जीवन को बेहतर बनाने की इच्छा भी दिखाई देती है।

अंतर्वंशी की अंजी स्त्री-जीवन के एक अन्य पक्ष—विपरीत परिस्थितियों में धैर्य और आत्मबल—को सामने लाती है। जीवन की कठिनाइयों के सामने टूटने के बजाय वह आगे बढ़ने में विश्वास करती है। उसका कथन—"ज़िन्दगी तो गुज़ारनी ही है चाहे हँसकर या रोकर। हँसते रहने से हिम्मत रहती है, जितना रोओ उतना दुःख अन्दर-अन्दर बढ़ता है।"[4]—उसकी जीवन-दृष्टि को व्यक्त करता है। वाना, अंजी और राधिका जैसे पात्रों के माध्यम से उषा प्रियंवदा स्त्री को केवल परिस्थितियों से पीड़ित व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उसे अपने जीवन की कठिनाइयों से जूझने, स्वयं को पहचानने और धीरे-धीरे अपनी राह बनाने वाली चेतनशील स्त्री के रूप में सामने लाती हैं।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता भारतीय और पाश्चात्य जीवन-दृष्टियों का समानांतर चित्रण है। विदेश, विशेषकर अमेरिका, में रहने वाले उनके पात्र एक नए सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से परिचित होते हैं, लेकिन अपनी भारतीय संस्कारगत चेतना से पूरी तरह अलग नहीं हो पाते। उनके भीतर परंपरा और आधुनिकता, पारिवारिक दायित्व और व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा संबंध और आत्मसम्मान के बीच निरंतर संवाद और द्वंद्व चलता रहता है। यही द्वंद्व उनके स्त्री पात्रों को अधिक जीवंत और विश्वसनीय बनाता है।

उषा प्रियंवदा की नायिकाओं के लिए विवाह और परिवार का विशेष महत्त्व है। वे संबंधों को सहजता से तोड़कर आगे बढ़ने वाली स्त्रियाँ नहीं हैं, बल्कि उन्हें बचाए रखने का भरसक प्रयास करती हैं। *रुकोगी नहीं राधिका* की राधिका, *शेष यात्रा* की अनु तथा *अंतर्वंशी* की वाना और अंजी अलग-अलग परिस्थितियों में इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन संबंधों को बनाए रखने की यह कोशिश उनके आत्मसम्मान को पूरी तरह समाप्त नहीं करती। जब परिस्थितियाँ उनके अस्तित्व और गरिमा को प्रभावित करने लगती हैं, तब वे अपने जीवन के बारे में नए सिरे से सोचने और अपने लिए अलग रास्ता चुनने का साहस भी दिखाती हैं। इस प्रकार उषा प्रियंवदा की स्त्री परंपरा और आधुनिकता के किसी एक छोर पर खड़ी दिखाई नहीं देती, बल्कि दोनों के बीच अपना संतुलन और अपनी पहचान तलाशती हुई आगे बढ़ती है।

विदेशी परिवेश इन स्त्री पात्रों के भीतर आत्मनिर्भर बनने की चेतना को भी विकसित करता है। अमेरिका का अपेक्षाकृत स्वतंत्र सामाजिक वातावरण उन्हें अपनी क्षमताओं, इच्छाओं और व्यक्तिगत पहचान पर विचार करने का अवसर देता है। फिर भी वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पूरी तरह पीछे नहीं छोड़तीं। *शेष यात्रा* की अनु और *अंतर्वंशी* की वाना इस सांस्कृतिक द्वंद्व को विशेष रूप से अभिव्यक्त करती हैं। उनके जीवन में आने वाले संकट उन्हें अपनी अब तक की मान्यताओं और संबंधों पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करते हैं।

शेष यात्रा की अनु अपने पति के साथ भावनात्मक रूप से गहराई से जुड़ी हुई है। इसलिए पति का किसी अन्य स्त्री के लिए उसे छोड़ देना उसके जीवन में गहरा आघात पैदा करता है। प्रारंभ में वह इस स्थिति से टूटती हुई दिखाई देती है, लेकिन धीरे-धीरे अपने जीवन को फिर से व्यवस्थित करती है। उसकी यह यात्रा केवल दांपत्य-विच्छेद के दुख से बाहर आने की कथा नहीं रह जाती, बल्कि आत्मनिर्भरता और अपने अस्तित्व को नए रूप में पहचानने की प्रक्रिया बन जाती है।

इसी प्रकार *अंतर्वंशी* की अंजी भी वैवाहिक जीवन में असफलता का सामना करती है। पति के दूसरी स्त्री के साथ चले जाने के बाद वह स्वयं को असहाय बनाकर नहीं छोड़ती, बल्कि अपने बच्चों की जिम्मेदारी सँभालते हुए स्वतंत्र रूप से जीवन को आगे बढ़ाती है। बाद में जब उसका पति वापस लौटना चाहता है, तो अंजी उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती। उसका यह निर्णय प्रतिशोध की अपेक्षा आत्मसम्मान और अपने अनुभवों से अर्जित जीवन-दृष्टि से अधिक जुड़ा दिखाई देता है। उसके बच्चे अमेरिकी परिवेश में पले-बढ़े हैं; इसलिए विवाह, तलाक और पारिवारिक संबंधों को देखने की उनकी दृष्टि पिछली पीढ़ी से अलग है। इस प्रकार अंजी के परिवार के माध्यम से लेखिका प्रवासी जीवन में बदलती पारिवारिक अवधारणाओं और पीढ़ीगत अंतर को भी सामने लाती हैं।

उषा प्रियंवदा की रचनात्मक विशेषता केवल उनके विषयों तक सीमित नहीं है; उनका शिल्प भी उनके कथा-साहित्य को विशिष्ट बनाता है। उनकी भाषा सामान्यतः पात्रों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और मनःस्थिति के अनुरूप विकसित होती है। कथानक में बाहरी घटनाओं के साथ पात्रों की आंतरिक अनुभूतियों और मानसिक द्वंद्व को भी पर्याप्त स्थान मिलता है। कई बार कथा का अंत पूरी तरह बंद निष्कर्ष देने के बजाय पाठक के लिए आगे की संभावनाएँ छोड़ देता है। यही खुलापन पाठक को पात्रों और उनकी परिस्थितियों पर स्वयं विचार करने का अवसर देता है। इस दृष्टि से उषा प्रियंवदा का कथा-साहित्य बदलते मानवीय संबंधों, स्त्री-अनुभवों और सामाजिक-सांस्कृतिक संक्रमण का संवेदनशील साहित्यिक रूप प्रस्तुत करता है।

चुनमुन से वाना तक: पहचान की बदलती यात्रा

इसी रचनात्मक परंपरा में *अंतर्वंशी* का विशेष स्थान है। सन् 2000 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित यह उषा प्रियंवदा का चौथा उपन्यास है। उपन्यास का सामाजिक आधार मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवन है, लेकिन इसकी केंद्रीय चिंता केवल मध्यवर्ग की समस्याओं तक सीमित नहीं रहती। स्त्री के 'स्व', उसकी स्वतंत्र पहचान, दांपत्य संबंधों की जटिलता और प्रवासी जीवन से उत्पन्न सांस्कृतिक अंतर्द्वंद्व इसके महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। कथा के केंद्र में वनश्री है, जो अमेरिका पहुँचकर 'वाना' के रूप में एक नए जीवन और परिवेश से जुड़ती है। भारतीय संस्कारों में पली-बढ़ी वनश्री और अमेरिकी जीवन के बीच विकसित होती वाना के माध्यम से उपन्यास स्त्री की बदलती पहचान के अनेक स्तर खोलता है।

भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों के बीच वाना का जीवन केवल भौगोलिक विस्थापन की कहानी नहीं है। यह उस स्त्री की यात्रा भी है जो पत्नी और माँ की पारंपरिक भूमिकाओं को निभाते हुए धीरे-धीरे अपने भीतर मौजूद स्वतंत्र व्यक्तित्व को पहचानने लगती है। नए परिवेश, बदलते संबंधों और जीवन की कठिन परिस्थितियों के बीच उसके सामने यह प्रश्न लगातार उपस्थित रहता है कि वह वास्तव में कौन है और अपने जीवन से क्या चाहती है। इस अर्थ में *अंतर्वंशी* को प्रवासी जीवन के साथ-साथ स्त्री के 'स्व' की खोज, आत्मसम्मान और आत्मपहचान की कथा के रूप में भी पढ़ा जा सकता है।

अंतर्वंशी के आरंभ में पाठक का परिचय राहुल और वाना से होता है, जो अमेरिका में प्रवासी जीवन जी रहे हैं। दोनों के बीच गहरी मित्रता है और यह संबंध कथा के विकास में आगे चलकर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वाना अपने पति शिवेश और दो बेटों—आकाश और विकास—के साथ अमेरिका में रहती है। एक दुर्घटना के बाद राहुल कुछ समय के लिए उनके घर में रहने लगता है और शिवेश तथा वाना उसकी देखभाल की जिम्मेदारी सँभालते हैं। राहुल और शिवेश पुराने मित्र हैं; दोनों ने साथ पढ़ाई की है और एक समय साथ काम भी किया था। लेकिन जीवन में दोनों की स्थितियाँ अलग-अलग हैं। राहुल अपने व्यावसायिक जीवन में सफल हो चुका है, जबकि शिवेश का जीवन अपेक्षाकृत अस्थिर बना रहता है।

वाना भी धीरे-धीरे घर की सीमाओं से बाहर निकलकर कामकाजी जीवन से जुड़ती है। वह मकान दिखाने और बेचने का काम करती है और इस प्रकार परिवार की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में अपना योगदान देती है। वाना की पहचान में आया परिवर्तन भी उसके प्रवासी जीवन का एक रोचक पक्ष है। बचपन की 'चुनमुन' विवाह के बाद 'वनश्री' और फिर अमेरिकी परिवेश में 'वाना' बन जाती है। 'वाना' नाम उसे राहुल से मिलता है। नामों का यह परिवर्तन केवल संबोधन का बदलाव नहीं लगता; इसे उसके जीवन के अलग-अलग चरणों और बदलती पहचान के संकेत के रूप में भी देखा जा सकता है। भारतीय पारिवारिक संस्कारों में पली-बढ़ी चुनमुन अमेरिका पहुँचकर एक ऐसे जीवन से परिचित होती है जहाँ उसे पत्नी और माँ होने के साथ-साथ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को समझने का अवसर भी मिलता है।

वाना के वैवाहिक जीवन में शिवेश की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है, लेकिन दोनों की जीवन-दृष्टि में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। शिवेश स्त्री की भूमिका को मुख्यतः पत्नी, गृहिणी और माँ के पारंपरिक दायरे में देखता है। आरंभ में वाना भी इन भूमिकाओं को अपने जीवन का स्वाभाविक हिस्सा मानकर स्वीकार करती है। उसके व्यक्तित्व में निर्णायक परिवर्तन डॉ. सारिका के संपर्क में आने के बाद दिखाई देता है। सारिका उसे यह समझने के लिए प्रेरित करती है कि स्त्री की पहचान केवल गृहस्थी और मातृत्व से निर्धारित नहीं होती; उसकी अपनी आकांक्षाएँ, योग्यताएँ और स्वतंत्र अस्तित्व भी हैं। सारिका का यह विचार वाना को भीतर तक प्रभावित करता है—"तुम गृहिणी से अलग भी कुछ बन सकी हो।"[5]

राहुल का सहयोग भी वाना के आत्मविकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह अपनी अधूरी शिक्षा को आगे बढ़ाती है और बाद में काम करना शुरू करती है। इस प्रक्रिया में उसके भीतर आत्मविश्वास विकसित होता है। सारिका की आकस्मिक मृत्यु वाना के लिए गहरा भावनात्मक आघात है, क्योंकि सारिका केवल उसकी मित्र नहीं थी, बल्कि उसके भीतर आत्मचेतना जगाने वाली स्त्री भी थी। उसके प्रभाव से वाना अपने जीवन और अपनी इच्छाओं को नए दृष्टिकोण से देखने लगी थी। धीरे-धीरे उसके रहन-सहन, भाषा और सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन आता है, लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बदलाव उसके भीतर होता है—वह स्वयं को केवल शिवेश की पत्नी के रूप में देखने के बजाय एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पहचानने लगती है।

अमेरिकी परिवेश में रहते हुए वाना घर और बाहर दोनों की जिम्मेदारियाँ सँभालना सीखती है। अपने आसपास के लोगों से मिलने वाला सहयोग भी उसे स्वयं को महत्त्व देना सिखाता है। लंबे अंतराल के बाद राहुल जब उससे मिलता है तो वह भी वाना के व्यक्तित्व में आए इस परिवर्तन को महसूस करता है। जिस स्त्री का जीवन कभी मुख्यतः पति और परिवार के इर्द-गिर्द घूमता था, उसी के भीतर अब अपने लिए भी जीने की इच्छा जन्म ले चुकी है। इस प्रकार वाना का परिवर्तन अचानक नहीं होता; शिक्षा, मित्रता, आर्थिक सक्रियता और जीवनानुभव धीरे-धीरे उसकी आत्मचेतना को विकसित करते हैं।

परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ने पर वाना की आत्मनिर्भरता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। शिवेश की नौकरी चली जाने के बाद वह परिवार की जिम्मेदारी उठाती है। दूसरी ओर आर्थिक संकट से निकलने के प्रयास में शिवेश गलत रास्ते पर चला जाता है और अपराध-जगत से जुड़े लोगों के संपर्क में आ जाता है। वह इस सच्चाई को वाना से छिपाकर रखता है। यहाँ पति-पत्नी के संबंध में केवल आर्थिक संकट ही नहीं, बल्कि विश्वास और संवाद का संकट भी सामने आता है।

इसी दौरान वाना के जीवन में अंजुमन अर्थात् अंजी का प्रवेश होता है। अंजी तलाक के बाद अपने बच्चों की जिम्मेदारी स्वयं सँभाल रही है और कठिन परिस्थितियों के बावजूद आत्मनिर्भर जीवन जी रही है। सारिका की मृत्यु के बाद वाना को अंजी में एक ऐसी मित्र मिलती है जो संकट के समय उसके साथ खड़ी रहती है। नौकरी छूटने के बाद भी वाना हार नहीं मानती; अंजी के सहयोग से वह किंडरगार्टन शुरू करती है। इस प्रसंग में स्त्री-मित्रता केवल भावनात्मक सहारे तक सीमित नहीं रहती, बल्कि आर्थिक आत्मनिर्भरता और जीवन को दोबारा व्यवस्थित करने की शक्ति भी बनती है।

राहुल और वाना का संबंध भी समय के साथ नया रूप ग्रहण करता है। राहुल के मन में वाना के लिए मित्रता से अधिक गहरी भावनाएँ हैं, लेकिन लंबे समय तक वाना उन्हें स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती। जब राहुल का विवाह उसकी बहन बेबी की सहेली देवप्रिया से तय होता है, तब वाना पहली बार अपने भीतर छिपे प्रेम को पहचानती है। इसके बावजूद वह तत्काल अपने वैवाहिक संबंध से बाहर निकलने का निर्णय नहीं लेती। उसके भीतर राहुल के प्रति प्रेम और शिवेश तथा परिवार के प्रति दायित्व के बीच गहरा अंतर्द्वंद्व बना रहता है।

कथा उस समय निर्णायक मोड़ लेती है जब शिवेश का एक साथी पुलिस की गिरफ्त में आ जाता है और स्वयं शिवेश को भी छिपना पड़ता है। जाते समय वह वाना और बच्चों की जिम्मेदारी राहुल को सौंप देता है। परिस्थितियों से बचते हुए राहुल, वाना और परिवार के अन्य सदस्य कुछ समय के लिए दूर चले जाते हैं। इसी दौरान वाना को यह भी ज्ञात होता है कि राहुल लंबे समय से उससे प्रेम करता है। दोनों अपनी भावनाओं को स्वीकार करते हैं, लेकिन इसी समय वाना को शिवेश के जीवन से जुड़ी वास्तविकताओं का सामना भी करना पड़ता है। प्रेम, वैवाहिक दायित्व और नैतिक जिम्मेदारी के बीच उसका मानसिक संघर्ष और गहरा हो जाता है।

राहुल देवप्रिया से अपना विवाह तोड़ देता है और वाना तथा बच्चों के साथ नया जीवन शुरू करना चाहता है, किंतु वाना तुरंत उसके साथ जाने के लिए तैयार नहीं होती। वह शिवेश की प्रतीक्षा करती है और राहुल द्वारा दी गई आर्थिक सहायता पर निर्भर होने के बजाय अंजी के साथ किंडरगार्टन चलाकर अपनी जीविका बनाए रखती है। यह प्रसंग वाना के विकसित होते आत्मसम्मान को रेखांकित करता है। अब वह अपने भविष्य के लिए केवल किसी पुरुष के निर्णय या आर्थिक सहारे पर निर्भर रहने वाली स्त्री नहीं रह गई है।

इसी समय वाना को अपने गर्भवती होने का पता चलता है। अंजी उसे समझाती है कि राहुल को इस सत्य से अवगत होना चाहिए। अंततः वाना उसे यह बात बताती है। लगभग आठ महीने बाद शिवेश अचानक घर लौटता है। वाना उसके सामने अपने और राहुल के संबंध की सच्चाई छिपाने के बजाय स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है। यह सत्य शिवेश के लिए असहनीय सिद्ध होता है और अगले दिन वह आत्महत्या कर लेता है। शिवेश की मृत्यु वाना को गहरे भावनात्मक संकट में डाल देती है।

इसके बाद राहुल वाना के साथ जीवन बिताने, उसके बच्चों को अपनाने और आने वाले बच्चे की जिम्मेदारी स्वीकार करने का निर्णय लेता है। परिवार की स्वीकृति भी उसे मिल जाती है। किंतु इस पूरे घटनाक्रम का महत्त्व केवल वाना और राहुल के प्रेम की परिणति में नहीं है। अधिक महत्त्वपूर्ण है वाना की वह लंबी आंतरिक यात्रा जिसमें एक पारंपरिक पारिवारिक व्यवस्था में स्वयं को लगभग पूरी तरह समर्पित कर देने वाली स्त्री धीरे-धीरे अपनी शिक्षा, आर्थिक क्षमता, इच्छाओं और स्वतंत्र अस्तित्व को पहचानती है।

इस दृष्टि से चुनमुन से वनश्री और वनश्री से वाना बनने की प्रक्रिया उसके नाम का परिवर्तन भर नहीं रह जाती। यह उसके व्यक्तित्व में आए सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक बदलाव की भी प्रतीक बन जाती है। पत्नी और माँ की भूमिकाओं को निभाते हुए वह अपने भीतर के 'स्व' तक पहुँचने का प्रयास करती है। इसलिए *अंतर्वंशी* में वाना की कथा को केवल दांपत्य-संकट अथवा प्रेम-संबंध की कहानी के रूप में पढ़ना पर्याप्त नहीं होगा; उसके भीतर प्रवासी परिवेश में स्त्री की आत्मपहचान, आर्थिक आत्मनिर्भरता, संबंधों की जटिलता और अपने जीवन पर अधिकार प्राप्त करने की लंबी प्रक्रिया भी निहित है।

अंतर्वंशी में उषा प्रियंवदा ने समकालीन जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पक्षों—स्त्री अस्मिता और प्रवासी अनुभव—को एक-दूसरे से जोड़कर प्रस्तुत किया है। उपन्यास की विशेषता यह है कि इसके पात्र किसी आदर्श या काल्पनिक संसार के प्रतिनिधि न होकर हमारे आसपास के जीवन से निकले हुए प्रतीत होते हैं। वाना, राहुल, शिवेश, सारिका और अंजी अपनी खूबियों, कमजोरियों, इच्छाओं और अंतर्द्वंद्वों के कारण सहज मानवीय चरित्र बनकर सामने आते हैं। प्रवासी परिवेश में उनके संबंधों के बदलते स्वरूप के साथ-साथ स्त्री की अपनी पहचान और स्वतंत्र जीवन की आकांक्षा भी कथा का केंद्रीय प्रश्न बनती जाती है।

***अंतर्वंशी* में स्त्री अस्मिता**

उषा प्रियंवदा के स्त्री-विमर्श को केवल पुरुष-विरोध के रूप में देखना उचित नहीं होगा। उनके यहाँ प्रश्न पुरुष की उपस्थिति को नकारने का नहीं, बल्कि स्त्री-पुरुष संबंधों में समानता, सम्मान और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए आवश्यक स्थान की तलाश का है। *अंतर्वंशी* में पुरुष पात्रों की भूमिकाएँ भी एक जैसी नहीं हैं। एक ओर शिवेश की पारंपरिक सोच वाना के व्यक्तित्व को सीमित करती है, तो दूसरी ओर राहुल उसके जीवन में सहयोग और प्रोत्साहन का माध्यम बनता है। इस प्रकार लेखिका यह संकेत करती हैं कि स्त्री की अस्मिता का निर्माण पुरुष से अलगाव में नहीं, बल्कि स्वयं की पहचान और समानता पर आधारित मानवीय संबंधों के बीच भी संभव है।

वाना इस दृष्टि से उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण स्त्री पात्र है। भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी और सीमित शिक्षा प्राप्त चुनमुन विवाह के बाद वनश्री और फिर अमेरिका पहुँचकर वाना बन जाती है। उसके नामों में आया यह बदलाव उसके जीवन में घटित सांस्कृतिक और मानसिक परिवर्तनों का भी संकेत देता है। आरंभिक जीवन में उसके भीतर पत्नी के पारंपरिक आदर्श गहरे बसे हुए हैं। पति और परिवार के प्रति समर्पण को वह अपने कर्तव्य का स्वाभाविक हिस्सा मानती है। पाश्चात्य परिवेश में रहने के बावजूद उसके भीतर के भारतीय संस्कार लंबे समय तक बने रहते हैं।

शिवेश की दृष्टि में पत्नी की भूमिका मुख्यतः गृहस्थी सँभालने, पति की आवश्यकताओं को पूरा करने और बच्चों की देखभाल करने तक सीमित है। वाना भी लंबे समय तक इसी व्यवस्था के भीतर स्वयं को ढालकर जीवन बिताती है। राहुल के प्रति आकर्षण अनुभव करने के बावजूद वह अपनी भावनाओं को सहजता से स्वीकार नहीं करती। उसके भीतर वैवाहिक दायित्व, संस्कार और व्यक्तिगत इच्छा के बीच लगातार संघर्ष चलता रहता है। यही अंतर्द्वंद्व वाना के चरित्र को अधिक मानवीय बनाता है। वह अचानक परंपरा से विद्रोह करने वाली नायिका नहीं है; उसकी आत्मचेतना अनुभवों और संघर्षों के बीच धीरे-धीरे विकसित होती है।

वाना के व्यक्तित्व-विकास में डॉ. सारिका की मित्रता एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध होती है। सारिका उसे यह समझने की दृष्टि देती है कि स्त्री का अस्तित्व केवल पत्नी, गृहिणी और माँ की भूमिकाओं में समाप्त नहीं हो जाता। स्त्री की अपनी इच्छाएँ, क्षमताएँ और सपने भी उसके जीवन का उतना ही महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। सारिका के शब्द वाना को अपने भीतर छिपी संभावनाओं की ओर देखने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रेरणा के बाद शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता उसके लिए केवल जीविका का साधन नहीं रहती, बल्कि अपनी पहचान बनाने का माध्यम भी बनती है।

वाना अपनी अधूरी शिक्षा को आगे बढ़ाती है और बाद में कामकाजी जीवन में प्रवेश करती है। परिस्थितियाँ कठिन होने पर उसकी आर्थिक सक्रियता का वास्तविक महत्त्व सामने आता है। शिवेश की नौकरी छूटने पर वह परिवार की जिम्मेदारी उठाने में सक्षम होती है और उसके घर से चले जाने के बाद भी अपने तथा बच्चों के जीवन को सँभालती है। यहाँ आर्थिक स्वावलंबन स्त्री-अस्मिता के व्यावहारिक आधार के रूप में उभरता है। वाना अब केवल परिस्थितियों को सहने वाली स्त्री नहीं रहती; वह उनके बीच अपने लिए रास्ता बनाने की क्षमता भी विकसित करती है।

फिर भी उसकी आत्मनिर्भरता का अर्थ यह नहीं है कि वह अपने भावनात्मक और सांस्कृतिक संबंधों से तुरंत मुक्त हो जाती है। राहुल के प्रति अपने प्रेम को पहचानने के बाद भी शिवेश को छोड़कर उसके साथ जाने का निर्णय लेना उसके लिए सहज नहीं है। उसके भीतर प्रेम, पत्नी होने का दायित्व, अपराधबोध और अपने भविष्य की इच्छा—सभी एक साथ सक्रिय हैं। इसी मानसिक स्थिति को लेखिका इन शब्दों में व्यक्त करती हैं—"वाना को सब कुछ ऐसे ही, चुपचाप पीछे छोड़ जाने के विचार से बड़ा चैन आ गया है। पीछे, शिवेश आ गया तो? ....वह राहुल से प्यार करती है, इसलिए नहीं, वह शिवेश को इस स्थिति में अकेले छोड़ रही है इसलिए।"[6]

यह दुविधा वाना की कमजोरी मात्र नहीं है; बल्कि उसके व्यक्तित्व में मौजूद परंपरा और आधुनिक चेतना के संघर्ष को सामने लाती है। एक ओर वह अपने जीवन को स्वयं निर्धारित करना चाहती है, दूसरी ओर पुराने संस्कार और संबंधों से जुड़ी जिम्मेदारियाँ उसे रोकती हैं। इसीलिए उसकी अस्मिता की यात्रा सरल और सीधी नहीं है। वह अनेक मानसिक स्तरों पर स्वयं से संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती है।

अपने इसी अंतर्द्वंद्व को वाना स्वयं भी पहचानने लगती है। पत्नी और माँ की भूमिकाओं के पीछे दबे अपने स्वतंत्र स्त्री-व्यक्तित्व की खोज उसके भीतर लंबे समय से चल रही है। उसका यह आत्मबोध इन शब्दों में सामने आता है—"मैं कब से एकाधिक स्तरों पर जीती आ रही हूँ, पत्नी, माँ—जो मेरी शिक्षा रही, पर अन्दर की स्त्री, जो हमेशा इस शांत मुखाकृति के भीतर स्टेटस, खोज में व्यस्त, इधर-उधर भटकती रही,........मैं कब तक अपने को ठगती रहूँगी—कब तक अपने 'एक' को अपूर्ण रखूँगी।"[7] यह कथन वाना की अस्मिता-चेतना को समझने की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। यहाँ वह पहली बार अपने भीतर की उस स्त्री को स्पष्ट रूप से पहचानती दिखाई देती है जिसकी इच्छाएँ पारिवारिक भूमिकाओं से आगे जाती हैं।

स्त्री की इस आत्मचेतना में शिक्षा की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। महात्मा गांधी का विचार था—"जैसे-जैसे महिलाओं को अपनी शक्ति का आभास होगा जो कि उतना ही होगा जितनी शिक्षा वह प्राप्त कर सकेगी तब स्वाभाविक रूप से वे उन असमानताओं का विरोध करेगी जो उन्हें सहन करनी पड़ रही है।"[8] *अंतर्वंशी* में वाना की यात्रा को भी शिक्षा और आत्मनिर्भरता के इसी संबंध में देखा जा सकता है। शिक्षा उसके भीतर केवल ज्ञान का विस्तार नहीं करती, बल्कि अपने सामर्थ्य को पहचानने का आत्मविश्वास भी पैदा करती है।

सारिका स्वयं भी स्वतंत्र स्त्री-चेतना का एक अलग रूप प्रस्तुत करती है। वह शिक्षित है, डॉक्टर है और अपने जीवन के निर्णयों को लेकर स्पष्ट दृष्टि रखती है। जहाँगीर से प्रेम करने के बावजूद वह ऐसे संबंध को स्वीकार नहीं करती जिसमें उसे दूसरी पत्नी की स्थिति में रहना पड़े। जहाँगीर के विवाह के बाद उसका सारिका को दूसरी पत्नी के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव उसके आत्मसम्मान से टकराता है। इसलिए वह उस संबंध से पीछे हटकर अपने पेशे और जीवन की ओर लौटती है। सारिका का यह निर्णय दिखाता है कि प्रेम उसके लिए महत्त्वपूर्ण है, लेकिन प्रेम की कीमत पर अपने सम्मान और स्वतंत्र पहचान का त्याग स्वीकार्य नहीं है।

अंजी स्त्री-अस्मिता का एक और व्यावहारिक तथा दृढ़ रूप सामने लाती है। पति के उसे छोड़ देने और विवाह-विच्छेद के बाद वह अपने जीवन को समाप्त मानकर नहीं बैठती। वह काम करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है और अपनी परिस्थितियों से समझौता करने के बजाय उन्हें सँभालते हुए आगे बढ़ती है। जब उसका पति बाद में वापस लौटना चाहता है, तब अंजी उसे स्वीकार नहीं करती। यह निर्णय उसके आत्मसम्मान और जीवनानुभव से पैदा हुई स्वतंत्र चेतना का परिचायक है।

अंजी की भूमिका केवल अपने जीवन तक सीमित नहीं रहती। वह वाना के कठिन समय में उसके लिए भावनात्मक और व्यावहारिक सहारा बनती है। नौकरी छूटने पर दोनों मिलकर किंडरगार्टन शुरू करती हैं। वाना के व्यक्तिगत जीवन में संकट आने पर भी अंजी उसके साथ रहती है और उसे राहुल से सत्य न छिपाने की सलाह देती है। इस प्रकार अंजी

और वाना का संबंध उपन्यास में स्त्री-सहयोग और स्त्री-मित्रता के महत्त्वपूर्ण पक्ष को सामने लाता है। एक स्त्री दूसरी स्त्री के जीवन को सँभालने, निर्णय लेने और आत्मनिर्भर बनने में सहायक बनती है।

इस दृष्टि से *अंतर्वंशी* में वाना, सारिका और अंजी स्त्री-अस्मिता के तीन अलग-अलग, किंतु परस्पर जुड़े रूप प्रस्तुत करती हैं। वाना के भीतर अस्मिता की चेतना धीरे-धीरे विकसित होती है; सारिका शिक्षा और आत्मसम्मान से संपन्न स्वतंत्र स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है; जबकि अंजी जीवन के कठिन अनुभवों के बीच अर्जित आत्मनिर्भरता और दृढ़ता को सामने लाती है। इन तीनों के माध्यम से उषा प्रियंवदा यह रेखांकित करती हैं कि स्त्री की स्वतंत्रता का अर्थ परिवार अथवा पुरुष का निषेध नहीं है। उसका वास्तविक आधार अपने अस्तित्व को पहचानने, अपनी क्षमताओं पर विश्वास करने, आर्थिक रूप से सक्षम होने और जीवन के महत्त्वपूर्ण निर्णयों में अपनी इच्छा और गरिमा को स्थान देने में है। इस प्रकार *अंतर्वंशी* में स्त्री-अस्मिता किसी घोषणात्मक विद्रोह के बजाय आत्मबोध, आत्मसम्मान और अपने जीवन पर अधिकार प्राप्त करने की क्रमिक प्रक्रिया के रूप में सामने आती है।

अंतर्वंशी में प्रवासी जीवन

उषा प्रियंवदा के *अंतर्वंशी* में प्रवास केवल कथा की भौगोलिक पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि पात्रों के जीवन, संबंधों और मानसिकता को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण अनुभव है। उपन्यास का अधिकांश घटनाक्रम अमेरिका में घटित होता है और इसके माध्यम से भारतीय मूल के ऐसे परिवारों का जीवन सामने आता है, जो बेहतर भविष्य और नए अवसरों की तलाश में अपनी परिचित सामाजिक-सांस्कृतिक दुनिया से दूर जाकर बसते हैं। नई भूमि उन्हें अनेक संभावनाएँ देती है, लेकिन इसके साथ अकेलापन, सांस्कृतिक असमंजस, पारिवारिक तनाव और बदलते संबंधों जैसी चुनौतियाँ भी उनके जीवन का हिस्सा बनती हैं।

भारतीय मध्यवर्ग में लंबे समय तक विदेश में बसे युवक से बेटी का विवाह सामाजिक प्रतिष्ठा और बेहतर भविष्य से जोड़कर देखा जाता रहा है। *अंतर्वंशी* इस आकर्षक दिखाई देने वाली प्रवासी दुनिया के पीछे छिपे यथार्थ को भी सामने लाता है। विदेश पहुँचना अपने आप में सुखी और सफल जीवन की गारंटी नहीं बनता। नए देश में आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने, परिवार को सँभालने, बदलते सामाजिक मूल्यों से तालमेल बैठाने और अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने की चुनौतियाँ व्यक्ति को लगातार प्रभावित करती रहती हैं। इस प्रकार उपन्यास प्रवासी जीवन के आकर्षण और उसके भीतर छिपे संघर्ष—दोनों को साथ लेकर चलता है।

वाना की जीवन-यात्रा इस प्रवासी अनुभव को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बनती है। भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी वनश्री अमेरिका पहुँचकर 'वाना' बन जाती है। यह परिवर्तन केवल उसके नाम तक सीमित नहीं है। नए परिवेश के साथ उसकी भाषा, वेशभूषा, व्यवहार, जीवन-दृष्टि और स्वयं को देखने के तरीके में भी धीरे-धीरे बदलाव आता है। फिर भी उसके भीतर भारतीय संस्कारों की उपस्थिति समाप्त नहीं होती। परिणामतः उसका व्यक्तित्व दो सांस्कृतिक संसारों के बीच विकसित होता है—एक ओर पारिवारिक दायित्व और संबंधों से जुड़ी भारतीय चेतना है, तो दूसरी ओर अमेरिकी समाज में मिलने वाली व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की संभावनाएँ। यही सांस्कृतिक द्वंद्व वाना के प्रवासी अनुभव को अधिक जटिल और मानवीय बनाता है।

प्रवास का अनुभव उपन्यास के सभी पात्रों के लिए समान नहीं है। राहुल अमेरिकी जीवन में अपने लिए अपेक्षाकृत सफल स्थान बना लेता है, जबकि शिवेश आर्थिक और व्यक्तिगत स्तर पर लगातार अस्थिरता का सामना करता है। वाना का रास्ता इन दोनों से अलग है। वह प्रारंभ में परिवार और पति के इर्द-गिर्द अपना जीवन व्यवस्थित करती है, लेकिन परिस्थितियाँ बदलने पर शिक्षा, रोजगार और आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ती है। सारिका और अंजी भी अपने-अपने ढंग से प्रवासी जीवन की चुनौतियों से जूझती हैं। इस प्रकार लेखिका प्रवास को सफलता अथवा असफलता के किसी एक निश्चित अनुभव में सीमित नहीं करतीं; प्रत्येक पात्र अपनी परिस्थितियों, क्षमताओं और निर्णयों के आधार पर इसे अलग तरह से जीता है।

प्रवासी जीवन का प्रभाव दांपत्य और पारिवारिक संबंधों पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। आर्थिक अस्थिरता और जीवन के प्रति अलग-अलग अपेक्षाएँ वाना और शिवेश के बीच धीरे-धीरे दूरी पैदा करती हैं। शिवेश की असफलताएँ केवल उसके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित नहीं करतीं, बल्कि दांपत्य संबंध में तनाव और संवादहीनता को भी बढ़ाती हैं। दूसरी ओर, वाना का आर्थिक रूप से सक्रिय और आत्मनिर्भर होना उसके व्यक्तित्व को नई दिशा देता है। इसलिए *अंतर्वंशी* में प्रवास केवल स्थान-परिवर्तन की कथा नहीं रह जाता; वह पारिवारिक भूमिकाओं और स्त्री-पुरुष संबंधों के पुनर्गठन का कारण भी बनता है।

उपन्यास में पहली पीढ़ी के प्रवासियों और अमेरिका में पले-बढ़े बच्चों के बीच दिखाई देने वाला अंतर भी उल्लेखनीय है। वाना और उसके जैसे पात्रों के भीतर भारतीय संस्कार और अमेरिकी जीवन-मूल्य दोनों सक्रिय हैं, जबकि नई पीढ़ी अमेरिकी सामाजिक व्यवस्था को अधिक सहजता से स्वीकार करती दिखाई देती है। आकाश और विकास का व्यवहार इसी पीढ़ीगत परिवर्तन का उदाहरण है। उनके लिए अमेरिका कोई बाहरी या अपरिचित देश नहीं, बल्कि उनका अपना सामाजिक परिवेश है। इसलिए परिवार, अनुशासन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संबंधों को देखने की उनकी दृष्टि माता-पिता की पीढ़ी से अलग है।

यह अंतर विकास के कथन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—"मैं क्यों रहूँ? यह कोई भारत है? यह अमेरिका है, अमेरिका।"9 माँ के डाँटने या अनुशासित करने पर उसका यह कहना कि—"मैं अभी पुलिस को फोन करता हूँ कि मेरी माँ मुझे मार-पीट रही है।"10—उस सामाजिक वातावरण की ओर संकेत करता है जिसमें बच्चा अपने व्यक्तिगत अधिकारों को लेकर अधिक सजग है। भारतीय पारिवारिक अनुशासन और अमेरिकी अधिकार-बोध के बीच का यह अंतर वाना जैसी पहली पीढ़ी की प्रवासी माँ के लिए एक नई चुनौती बनकर सामने आता है।

नई पीढ़ी की दृष्टि में पारिवारिक संबंधों के अर्थ भी बदलते दिखाई देते हैं। अंजी के बच्चे माता-पिता के वैवाहिक संबंध को उसी पारंपरिक दृष्टि से नहीं देखते जिससे पिछली पीढ़ी उसे देखती रही है। पिता के वापस लौटने की इच्छा के बावजूद वे उसे सहज रूप से स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। इसी प्रकार शिवेश की मृत्यु के बाद आकाश और विकास को राहुल की उपस्थिति स्वीकार करने में वैसी सामाजिक अथवा मानसिक बाधा दिखाई नहीं देती जैसी पारंपरिक भारतीय परिवेश में अपेक्षित हो सकती थी। वे अपनी माँ के नए जीवन और आने वाले बच्चे को भी सहजता से स्वीकार करते हैं। इन प्रसंगों के माध्यम से उपन्यास यह दिखाता है कि प्रवास केवल व्यक्ति की बाहरी जीवन-शैली नहीं बदलता, बल्कि परिवार, विवाह और संबंधों के प्रति अगली पीढ़ी की सोच को भी नए रूप में ढालता है।

इस प्रकार *अंतर्वंशी* में अमेरिका केवल आधुनिकता और आकर्षण का प्रतीक नहीं है। उसके भीतर अवसर हैं तो संघर्ष भी; स्वतंत्रता है तो अकेलापन और असुरक्षा भी; आर्थिक संभावनाएँ हैं तो संबंधों के टूटने और बदलने की स्थितियाँ भी मौजूद हैं। भारतीय मूल के पात्र इस नए परिवेश को अपनाते हुए अपनी सांस्कृतिक स्मृतियों और संस्कारों से लगातार संवाद करते रहते हैं। इसी प्रक्रिया में उनकी पहचान भी बदलती और पुनर्गठित होती रहती है।

निष्कर्ष

उषा प्रियंवदा की विशेषता यह है कि वे प्रवासी जीवन को न तो पूरी तरह आकर्षक बनाकर प्रस्तुत करती हैं और न ही केवल विस्थापन और पीड़ा की कथा के रूप में। राहुल, शिवेश, वाना, सारिका, अंजी तथा नई पीढ़ी के बच्चों के माध्यम से प्रवास के अलग-अलग अनुभव सामने आते हैं। विशेष रूप से वाना के जीवन में प्रवास और स्त्री-अस्मिता एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। अमेरिकी परिवेश उसे नई परिस्थितियों से जूझने के लिए बाध्य करता है और यही संघर्ष उसके भीतर शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और अपने 'स्व' को पहचानने की चेतना को भी मजबूत करता है। इस दृष्टि से *अंतर्वंशी* प्रवासी भारतीय जीवन के साथ-साथ बदलती स्त्री-चेतना, सांस्कृतिक संक्रमण और नई पीढ़ी की बदलती जीवन-दृष्टि का भी संवेदनशील आख्यान बन जाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. उषा प्रियंवदा, *रुकोगी नहीं राधिका*, पृ.115।
2. उषा प्रियंवदा, *रुकोगी नहीं राधिका*, पृ. 115।
3. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ.140 l
4. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 4।
5. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 113।
6. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 235।
7. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 237।
8. महात्मा गांधी, *Women and Social Justice*, पृ. 2।
9. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 169।
10. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 170।

सहायक ग्रन्थ

1. प्रियंवदा, उषा. *अंतर्वंशी.* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2000।
2. प्रियंवदा, उषा. *रुकोगी नहीं राधिका.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1966।
3. प्रियंवदा, उषा. *शेष यात्रा.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1984।
4. गांधी, महात्मा. *Women and Social Justice*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, 1954।
5. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Translated by Constance Borde and Sheila Malovany-Chevallier. New York: Alfred A. Knopf, 2010.
6. खेतान, प्रभा. *उपनिवेश में स्त्री.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
7. वर्मा, महादेवी. *श्रृंखला की कड़ियाँ.* नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
8. गोयनका, कमल किशोर. *हिंदी का प्रवासी साहित्य.* गाजियाबाद: अमित प्रकाशन, 2011।
9. श्रीधर, प्रदीप एवं शिखा श्रीधर (सं.). *प्रवासी हिंदी साहित्य के विविध आयाम.* कानपुर: विद्या प्रकाशन, 2018।
10. गोयनका, कमल किशोर (प्रधान सं.). *प्रवासी साहित्य: जोहान्सबर्ग से आगे.* नई दिल्ली: विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, 2015।
11. वर्मा, विमलेश कांति (सं.). *प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य.* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2024।
12. हेमलता, सी. पी. *प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य.* कानपुर: विद्या प्रकाशन, 2023।
13. वर्मा, विमलेश कांति एवं भावना सक्सेना. *सूरीनाम का सृजनात्मक हिन्दी साहित्य.* नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2015।